प्लेटो का अनुकरण सिद्धांत

परिचय : यूनान का महान दार्शनिक प्लेटो (428 ई.पू. – 347 ई.पू.) एक मौलिक चिंतक के रूप में विख्यात है। वह सुकरात का शिष्य था। अरस्तू इसका शिष्य है। होमर का समकालीन। प्लेटो के समय में कवि को समाज में आदरणीय स्थान प्राप्त था। वह (कवि) उपदेशक, मार्गदर्शक, संस्कृति का संरक्षक माना जाता था।

रचनाएँ : दि रिपब्लिक, दि स्टैट्समैन, दि लाग, इयोन, सिम्पोजियम।

अनुकरण सिद्धांत :

प्लेटो के मत का सार:

1. कविता जगत की अनुकृति है, जगत स्वयं अनुकृति है अतः कविता सत्य से दोगुनी दूर है।
2. कविता भावों को उद्वेलित कर व्यक्ति को कुमार्गगामी बनाती है।
3. कविता अनुपयोगी है। कवि का महत्त्व एक मोची से भी कम है।

प्लेटो के अनुसार काव्य के प्रयोजन

1. सत्य का उद्घाटन
2. मानव कल्याण एवं राष्ट्रोत्थान
3. आनंद प्रदान करना
4. शिक्षा देना

प्लेटो ने काव्य का विरोध चार दृष्टियों से किया

1. नैतिक आधार
2. भावात्मक आधार
3. बौद्धिक आधार
4. शुद्ध उपयोगितावादी

- प्लेटो काव्य का महत्त्व उसी सीमा तक स्वीकार करता है, जहां तक वह गणराज्य के नागरिकों में सत्य, सदाचार की भावना को प्रतिष्ठित करने में सहायक हो।
- कला और साहित्य की कसौटी उसके लिए 'आनंद एवं सौंदर्य' न होकर उपयोगितावाद थी। वह कहता है– चमचमाती हुई स्वर्णजटित अनुपयोगी ढाल से गोबर की उपायोगी टोकरी अधिक सुंदर है। उसके विचार से कवि या चित्रकार का महत्त्व मोची या बढ़ई से भी कम है, क्योंकि वह अनुेति मात्र प्रस्तुत करता है।
- सत्य रूप तो केवल विचार रूप में अलौकिक जगत में ही है। काव्य मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति है। इस प्रकार वह सत्य से दोगुना दूर है। कविता अनुकृति और सर्वथा अनुपयोगी है, इसलिए वह प्रशंसनीय नहीं अपितु दंडनीय है।
- वह कवि के तुलना में एक चिकित्सक, सैनिक या प्रशासक का महत्त्व अधिक मानता है।
- वह कहता है कि कवि अपनी रचना से लोगों की भावनाओं और वासनाओं को उद्वेलित कर समाज में दुर्बलता और अनाचार के पोषण को भी अपराध करता है। कवि अपनी कविता से आनंद प्रदान करता है परंतु दुराचार एवं कुमार्ग की ओर प्रेरित करता है इसलिए राज्य में सुव्यवस्था हेतु उसे राज्य से निष्कासित कर देना चाहिए।
- उसका मानना था कि किसी समाज में सत्य, न्याय और सदाचार की प्रतिष्ठा तभी संभव है जब उस राज्य के निवासी वासनाओं और भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए विवेक एवं नीति के अनुसार आचरण करें।
- वह चुनौती देते हुए होमर से पूछना चाहता है कि क्या कविता से किसी को रोगमुक्त कर सकती है? क्या कविता से कोई युद्ध जीता जा सकता हैं? क्या कविता से श्रेष्ठ शासन व्यवस्था स्थापित की जा सकती है ?
- प्लेटो के अनुसार मानव के व्यक्तित्व के तीन आंतरिक तत्त्व होते हैं– बौद्धिक, ऊर्जस्वी एवं सतृष्ण।
- काव्य विरोधी होने के बावजूद प्लेटो ने वीर पुरुषों के गुणों को उभारकर प्रस्तुत किए जाने वाले तथा देवताओं के स्तोत्र वाले काव्य को महत्त्वपूर्ण एवं उचित माना है।

++

अरस्तू का अनुकरण (अनुकृति सिद्धांत)

- अरस्तू का अनुकरण सिद्धांत प्लेटो के अनुकरण सिद्धांत से भिन्न है तथा उसे एक नया अर्थ प्रदान करता है। प्लेटो ने कविता की तुलना चित्रकला से की है, परंतु अरस्तू ने कविता की तुलना संगीत से करते हुए स्पष्ट किया कि चित्रकला में वस्तु जगत की चीजों के स्थूल रूपाकार का अनुकरण किया जाता है। परंतु संगीत कला में मनुष्य की आंतरिक वासनाओं, वृत्तियों और भावनाओं को मूर्त किया जाता है। संगीत से तुलना करने से स्पष्ट है कि अरस्तू को 'अनुकरण' का व्यापक और सूक्ष्म अर्थ मान्य है। उसके लिए अनुकरण दृश्य वस्तु जगत की स्थूल अनुकृति नहीं है। उसे अनुसार कवि अपनी रचना में दृश्य जगत की वस्तुओं को जैसी वे हैं, वैसी ही प्रस्तुत नहीं करता। या तो वह उन्हें बेहतर रूप में प्रस्तुत करता है या हीनतर रूप में। उसकी दृष्टि में 'अनुकरण' मात्र आकृति और स्वर का ही नहीं किया जाता, वह आंतरिक भावों और वृत्तियों का भी किया जाता है।
- अरस्तू के अनुसार कवि के अनुसरण का विषय कर्म–रत मनुष्य है। मनुष्य वाह्य जीवन के साथ ही मानसिक स्तर भी क्रियाशील होता है, उसके मानसिक क्रिया–कलापों का, उसकी मानसिक उधेड़ बुन का या मनोवृत्तियों के उत्कर्ष व अपकर्ष का चित्रण एक मनोवैज्ञानिक एवं रचनाशील प्रक्रिया है। कवि इसे अपनी रचनात्मक कल्पना द्वारा ही मूर्त या चित्रित कर सकता है। पलंग का चित्र निर्मित करने की प्रक्रिया में पलंग को जब चित्रकार देखता है तो नेत्रों माध्यम से देख गया रूपाकार पहले चित्रकार के मानसपटल पर अंकित होता है।उसके बाद उसका मनोबिंब चित्रकार की कल्पना शक्ति के सहारे चित्र के रूप में आकार ग्रहण करता है। इसलिए उसे नकल या स्थूल अनुकरण कहकर हेय नहीं ठहराया जा सकता।
- अरस्तू ने स्पष्ट कर दिया कि कवि और चित्रकार के कला माध्यम अलग अलग हैं। चित्रकार रूप और रंग के माध्यम से अनुकरण करता है, जबकि कवि भाषा, लय और सामंजस्य के माध्यम से। जिस प्रकार संगीत में सामंजस्य और लय का, नृत्य में केवल लय का उपयोग होता है, उसी प्रकार काव्यकला में अनुकृति के लिए भाषा का प्रयोग होता है। यह भाषा गद्य या पद्य दोनों में हो सकती है। इस स्तर पर वह संगीत कला के अधिक निकट है। भारतीय शब्दावली का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि अरस्तू के विचार से काव्य की आत्मा 'अनुकृति' है।
- अरस्तू ने अनुकरण को प्रतिकृति न मानकर पुनः सृजन अथवा पुनर्निमाण माना है। उसकी दृष्टि में अनुकरण नकल न होकर सर्जन प्रक्रिया है। इसमें संवेदना और आदर्शों का मेल है। इन्हीं के द्वारा कवि अपूर्णता को पूर्णता प्रदान करता है। अरस्तू के अनुसार तीन प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक का अनुकरण होता है–
  1. जैसी वे थीं या हैं। 2. जैसी वे कही या समझी जाती हैं। 3. जैसी वे होनी चाहिए।

  अरस्तू ने इन्हें प्रतीयमान, संभाव्य और आदर्श माना है। अरस्तू का अनुकरण संवेदनामय है। कल्पनायुक्त है, शुद्ध प्रतिकृति नहीं।
- अरस्तू ने अनुकृति के **माध्यम, विषय और विधान** का विस्तार से विचार किया। यद्यपि सभी कलाओं का मूल तत्त्व अनुकृति ही है, किंतु उन सबके माध्यम आदि के पारस्परिक अंतर के कारण ही वे एक दूसरी से पृथक की जाती है। अतः काव्य के विशिष्ट अध्ययन के लिए उसके माध्यम आदि का ज्ञान अपेक्षित है।
  - **माध्यम** – अनुकृति के लिए छंद ही माध्यम हो ऐसा आवश्यक नहीं। भाषा का कोई भी रूप काव्यात्मक अनुकृति का माध्यम बन सकता है। कविता मात्र छंदबद्ध प्रस्तुति नहीं है यदि ऐसा होता तो भौतिक या चिकित्साशास्त्र की छंदबद्ध प्रस्तुति भी कविता कहलाती।
  - **विषय** – काव्य में मानवीय क्रियाकलापों का अनुकरण होता है। काव्य के दो भेदों में से कामदी का लक्ष्य हीनतर रूप को प्रस्तुत करना होता है, जबकि त्रासदी का लक्ष्य भव्यतर चित्रण करना।
  - **विधान** – काव्य के विभिन्न रूपों में अनुकृत विषय एवं उनके माध्यम की समानता होते हुए भी उनमें परस्पर विधि या शैली का अंतर विद्यमान रहता है। अरस्तू ने सामान्यतः तीन शैलियों का उल्लेख किया है –
    1. जहाँ कवि कहीं स्वयं विषय का वर्णन करता है, कहीं अपने पात्रों के मुँह से कहलवा देता है। (प्रबंधात्मक शैली)
    2. प्रारंभ से लेकर अंत तक कवि एक जैसा ही रूप रखे। (आत्माभिव्यंजनात्मक शैली)
    3. कवि स्वयं दूर रहकर समस्त पात्रों को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करें। (नाट्य शैली)
- अरस्तू के अनुकरण सिद्धांत के महत्त्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं–
  1. कविता जगत की अनुकृति है तथा अनुकरण मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है।
  2. अनुकरण से हमें शिक्षा मिलती है। बालक अपने से बड़ों की क्रियाएं देखकर तथा उसका अनुकरण करके ही सीखता है।
  3. अनुकरण की प्रक्रिया आनंददायक है। हम अनुकृत वस्तु में मूल का सादृश्य आनंद प्राप्त करते हैं।
  4. अनुकरण के माध्यम से भयमूलक या त्रासमूलक वस्तु को भी इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे आनंद की अनुभूति हो।
  5. काव्यकला सर्वोच्च अनुकरणात्मक कला है तथा अन्य सभी ललित कलाओं एवं उपयोगी कलाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है। नाटक काव्यकला का सर्वाधिक उत्कृष्ट रूप है। अरस्तू ने काव्य की समीक्षा स्वतंत्र रूप से की है। प्लेटो की भांति दर्शन और राजनीति के चश्मे से नहीं देखा।

++

अरस्तू का विरेचन सिद्धांत

- अरस्तू द्वारा प्रतिपादित विरेचन सिद्धांत भी अनुकरण सिद्धांत की भांति प्लेटो द्वारा काव्य पर किए गए आक्षेप का प्रतिवाद रूप है। अरस्तू ने विरेचन सिद्धांत के द्वारा काव्य के उद्देश्य एवं प्रभाव की समुचित प्रतिष्ठा करते हुए त्रासदी अर्थात करूणा भाव की उद्‌बुद्धि के आस्वाद रूप की समीचीन व्याख्या प्रस्तुत की। अरस्तू के अनुसार त्रासदी के मूलभाव भावों को उद्‌बुद्ध कर विरेचन पद्धति के द्वारा मानव मन का परिष्कार करते हैं, जैसे विरेचन से शरीर–शुद्धि होती है।
- विरेचन का अर्थ है, विचारों का निष्कासन या शुद्धि। मूलतः चिकित्साशास्त्र के इस शब्द का साहित्य पर लागू करने का श्रेय अरस्तू को ही जाता है। प्लेटो ने कला और काव्य पर यह आक्षेप लगाया था कि इनसे हमारी दूषित वासनाएं एवं मनोवृत्तियां उत्तेजित एवं पुष्ट होती हैं– संभवतः इसी का खंडन करने के लिए अरस्तू ने प्रतिपादित कियाकि कला और साहित्य के द्वारा हमारे दूषित मनोविकारों का उचित रूप में विरेचन हो जाता है। अतः वे समाज के लिए हानिकारक नहीं है।
- त्रासदी के प्रसंग में अरस्तू ने लिखा कि करूणा और भय हमारे मन में एकत्र होते रहते हैं तो वे हानिकारक होत हैं। त्रासदी में कृत्रिम रूप से हमारी करूणा और भय की भावनाओं को निकास का अवसर मिल जाता है। करूणा तथा त्रास के उद्रेक के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन हो जाता है। भय और करूणा के उत्तेजन और उसके बाद उसवके शमन से एक प्रकार की मानसिक शांति प्राप्त होती है, जो सुखद होती है। इस सुखद अनुभूति को कलाजन्य–आस्वाद भी माना जा सकता हैं
- अरस्तू के परवर्ती विद्वानों ने तीन प्रकार से विरेचन की व्याख्या की–

  1. धर्मपरक 2. नीतिपरक 3. कलापरक 4. मानसिक

  धर्मपरक – धर्मपरक विरेचन का अर्थ है वाह्य विचारों की उत्तेजना और उनके शमन के द्वारा आत्मा की शुद्धि और शांति।

  नीतिपरक– नीतिपरक का अर्थ है मनोविकारों की उत्तेजना द्वारा विभिन्न अंतर्वृत्तियों का समन्वय या मन की शांति और परिष्कृति होना।

  कलापरक– कलापरक व्याख्या के संबंध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के विचार से कलाजन्य आनंद भी विरेचना की परिधि में आता है तो कुछ इसे अस्वीकार भी करते हैं। उनके विचार से विरेचन केवल अभावात्मक क्रिया है। आनंद का भाव उसकी सीमा से बाहर है, किंतु प्रो. बूचर ने इस प्रकार के तर्कों का खंडन करते हुए बताया है कि विरेचन के दो पक्ष हैं – एक **अभावात्मक** और दूसरा **भावात्मक**। मनोवेगों के उत्तेजन ओर तत्पश्चात उनके शमन से उत्पन्न मनःस्थिति उसक अभावात्मक पक्ष है, इसके उपरान्त कलात्मक परितोष (आनंद) उसका भावात्मक पक्ष है। भावात्मक के अनुसार मन की शांति को आनंदोपलब्धि कहा जा सकता है। अभावात्मक सिद्धांत के अनुसार दुखों का अभाव ही मन को शांति प्रदान कर सकता है। डॉ. नगेन्द्र ने केवल अभावात्मक पक्ष को ही स्वीकार किया है।
- डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार – विरेचन एक अपूर्ण सिद्धांत है जो केवल दुखान्त रचनाओं (ट्रेजडी) पर ही लागू होता है, किंतु अरस्तू के व्याख्याता इसे परिपूर्ण सिद्धांत के रूप में ग्रहण करके व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। काव्य और कलाओं द्वारा हमारी सभी प्रकार की भावनाओं की उद्दीप्ति और अभिव्यक्ति होती है, जबकि विरेचन द्वारा संबंध केवल विकृत या अशुद्ध भावनाओं से ही है। अशुद्ध एवं कलुषित भावनाओं के रेचन से आनंद प्राप्त करने की बात मानी जा सकती है, किंतु पवित्र एवं शुद्ध भावों के रेचन के संबंध में क्या कहा जाएगा ? अवश्य ही इस प्रसंग में इस प्रसंग में विरेचन की बात नहीं कही जा सकती। अस्तु इस एकांगी सिद्धांत को सर्वांगीण रूप देना उचित प्रतीत नहीं होता।
- विरेचन सिद्धांत की तुलना भारतीय आचार्य अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद से की जा सकती है, क्योंकि दोनों ही आचार्य काव्यानंद या रसास्वादन के मूल में वासनाओं के रेचन या उनकी अभिव्यक्ति की बात स्वीकार करते हैं।
- एफ.एल.लूकस ने विरेचन के सिद्धांत का विरोध किया है और माना है कि हम नाटक देखने इसलिए नहीं जाते कि मनोवेगों के निकाल दें, अपितु इसलिए जाते हैं कि उनको अधिक मात्रा में प्राप्त करें। भारतीय आलोचकों ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि दुखांत नाटक आनंददायक क्यों होते हैं।

++

वर्ड्सवर्थ का काव्य–भाषा–सिद्धांत

परिचयः विलियम वड्र्सवर्थ (1770–1850), मूलतः कवि, उनमें एक सहज सौंदर्यबोध और अबाधिक भाव–प्रवणता थी। परिस्थितिवश काव्यालोचन के क्षेत्र में प्रवेश। 1790 में फ्रांस, इटली और आल्पस पर्वत की पैदल यात्रा। आल्पस की प्राकृतिक सुषमा से उनकी सौंदर्य भावना प्रभावित। फ्रांस की राज्य क्रांति के परिणामों से इनकी आलोचना प्रभावित है।

काव्य– भाषा– सिद्धांत :

- 18वी शताब्दी के अंत में कवियों की शैली रूढ़ और निरूपयोगी हो गई थी। वड्र्सवर्थ ने तो परंपरागत भाषा–शैली का और भी तीव्र विरोध किया। आधुनिक युग में जिस प्रकार टी.एस.इलियट और एजरा पाडंड ने बोलचाल की भाषा के प्रयोग का समर्थन किया, वैसे वड्र्सवर्थ ने अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक भाषा शैली का समर्थन किया। वड्र्सवर्थ काव्यगत युक्तियों, मानवीकरण, वक्रोक्ति तथा पौराणिक दंत कथाओं, भावाभास आदि को काव्य के लिए उपयुक्त नहीं मानते।
- 18वीं शती में नव–अभिजात्यवादी युग में भाषा के निम्न और उच्च दो रूप प्रचलित थे। दैनिक जीवन की भाषा को निम्न कहा जाता था, दूसरी उच्च भाषा जो कृत्रिम, बोझिल और आडंबरपूर्ण हो गई थी वड्र्सवर्थ ने इसक त्याग किया।
- स्वछंदतावादी कवि विलियम वड्र्सवर्थ के काव्य रचना संबंधी विचार विशेष रूप से इनके प्रिफेस टु लिरिकल बैलेड्स में प्राप्त होते हैं। नए और मौलिक तथा पूर्ववर्ती विचारों से अलग विचार।
- अच्छी कविता जोरदार भावनाओं की सहज और स्वतः स्फूर्त उद्गार होती है।
- कविता के लिए विषय भी महत्त्वपूर्ण।
- काव्य में जनसामान्य में प्रचलित भाषा के प्रयोग पर बल।
- अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हो पर यांत्रिक ढंग पर उनकी भरमार नहीं।
- कवि की दृष्टि में मानव और प्रकृति तत्त्वतः एक दूसरे के लिए ही हैं और मानव मन, प्रकृति के सुंदर और रोचक गुणों का दर्पण है। इसी प्रकार कविता ज्ञान का सूक्ष्म तत्त्व और उसका प्राण–वायु है। ज्ञान का आरंभ और अंत कविता ही है। इस प्रकार वड्र्सवर्थ के काव्य संबंधी विचार भावुकतापूर्ण होते हुए भी व्यावहारिक और तत्त्वपूर्ण हैं।
- अन्य काव्य तत्त्वों की भांति ही भाषा के विषय में भी वड्र्सवर्थ कृत्रिमता एवं जटिलता की अपेक्षा भाषा के सारल्य तथा स्वाभाविकता से ओत–प्रोत रूप का ही समर्थन किया। यही कारण है कि उन्होंने गद्य भाषा का भी पक्षपात किया है।
- वड्र्सवर्थ भाषा में सरलता के पक्षपाती तो हैं किंतु उनका यह मत बिल्कुल नहीं कि काव्य भाषा ग्राम्यत्व दोष से दूषित किंवा अटपटी हो।

काव्य भाषा सिद्धांत

- काव्य में ग्रामीण बोलचाल की भाषा का प्रयोग
- गद्य–पद्य में समान भाषा प्रयोग
- प्राचीन कवियों की भाषा कृत्रिमता तथा आडंबर मुक्त
- छंद–विधान :
    - कविता को छंदमयी मानते हैं
    - उपयुक्त, नियमबद्ध, निश्चित छंद प्रयोग
    - छंद से विषय सम, संतुलित और आनंदप्रद
    - छंद कविता के लिए अनिवार्य नहीं

- वड्र्सवर्थ ने स्पष्ट किया कि जो कवि जनसामान्य के लिए काव्य सर्जन में प्रवर्त्त होता है, उसे कभी भी कृत्रिम एवं कल्पित भाषा की छूट नहीं दी जा सकती। वे यह भी मानते हैं कि यद्यपि कवि विशुद्ध रूप से जन भाषा में कविता नहीं कर सकता, फिर भी उसे काव्य भाषा का चयन जनभाषा से करके ही सदा उससे नैकट्य संबंध स्थापित रखना चाहिए। चुनाव करते समय काव्य के लिए आवश्यक परिमार्जन एंव परिवर्तन का अधिकार तो उसे रहता ही है।
- वड्र्सवर्थ का मानना है कि ग्रामीण अपनी निम्न स्थिति के कारण सामाजिक गर्व से मुक्त होकर सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी वाणी में सच्चाई तथा भावों में सरलता होती है।
- गद्य–पद्य में या गद्य और छन्दोबद्ध रचाना में कोई तात्विक भेद नहीं हो सकता। वड्र्सवर्थ की भाषा संबंधी इस अतिवादी मान्यता का परंपरा तथा वास्तविकता के साथ स्पष्ट विरोध है। गद्य–पद्य का अंतर केवल छंद के कारण नहीं होता, अपितु वाक्य विन्यास, पद चयन आदि के कारण होता है।
- वड्र्सवर्थ का मानना है कि प्राचीन कवियों ने वास्तविक घटनाओं से उद्बुद्ध भावों का आधार लेकर काव्य रचना की। चूंकि उनकी अनुभूति और भाव प्रबल थे, इसलिए सहज ही उनकी भाषा प्रभावी और अलंकृत हो गई। बाद के कवि यश की कामना से काव्य रचना करने लगे, जिससे भाषा में कत्रिमता आ गई। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथ में जाकर भाषा जटिल,कत्रिम और वागडिम्बयुक्त हो गई। ऐसी भाषा को वड्र्सवर्थ ने त्याज्य बताया।

++

कालरिज : कल्पना और फैन्सी

परिचय :

कल्पना सिद्धांत :

- कॉलरिज ने कल्पना को सौंदर्य विधायिनी तथा सर्जनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उसके अनुसार ''कवि प्रतिभा का शरीर उत्तम बोध है। ऊहा उसका वस्त्रावरण है, गति उसका जीवन है और कल्पना उसकी आत्मा है, जो सर्वत्र और प्रत्येक में है और सबको समन्वित कर उसे एक ललित ओर सुबोध परिपूर्ण रूप प्रदान करती है।''
- काजरिज ने मौलिक काव्य प्रतिभा की निम्नांकित बातों में पहचान निकाली है –
  1. विषयानुरूप छंद रचना का माधुर्य
  2. विषय का चयन
  3. कल्पना
  4. विचार की गहराई और उसकी ऊर्जा
- पाश्चात्य काव्य चिंतन के क्षेत्र में कल्पना का वही स्थान है जो भारतीय काव्यशास्त्र में 'प्रतिभा' का है। प्लेटो ने कल्पना के लिए फैन्टेसिया शब्दा का प्रयोग किया तथा एडिसन(1672–1719) ने उसे मूर्ति विधान करने वाली शक्ति बताया है। कल्पना के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण विचार कॉजरिज के हैं।
- कॉलरिज ने कल्पना के संबंध में विस्तार से अने विचार प्रकट किये हैं। उनके विचार से वह कल्पना शक्ति ही है जो निराकार विचारों और भावों को रूपायित करती है। इतना ही नहीं, भाव और विचार के बीच , जो एक दूसरे के विरोधी माने जाते हैं– सामंजस्य और अन्विति स्थापित करती है। वाह्य पदार्थों और आत्मतत्त्व के संबंध स्थापित करने में भी कल्पना शक्ति का हाथ रहता है।
- उन्होंने कल्पना (इमेजिनेशन) और ऊहा(फैन्सी) के अंतर पर भी प्रकाश डाला है। यद्यपि दोनों तात्त्विक रूप से एक हैं, तथापि अंतर है। कल्पना काव्यगत सार्थक और उपयुक्त बिंबों की रचना करती है, जबकि ऊहा कपोलकल्पना, दिवास्वप्न वाले अनर्गल, अवास्तविक कार्यकलाप को मन में रूपायित करती है। ऊहा निम्नकोटि की मनगढंत बिंब रचना करती है। वह स्वच्छंद अननुशासित होती है। परंतु कल्पना आत्म की एक शक्ति है। वह दिव्य है, सर्जनात्मक है। रचना–शीलता उसका गुण है। रचनाशील होने के कारण वह विवेकमय होती है। कल्पना निर्मित बिंब सार्थक और संबद्ध होते हैं। उनमे क्रम और औचित्य रहता है। वह जड़ और चेतन तथा भाव और विचार के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। विचार और भाव को साकार करना कल्पना का कार्य है।
- कल्पना दो प्रकार की होती है– एक मुख्य या प्राथमिक और दूसरी गौण या अनुवर्ती। मुख्य कल्पना मानव–ज्ञान की जीवंत शक्ति और प्रमुख माध्यम होती है। असीम में होने वाली अनंत सर्जन–क्रिया की ससीम मन में होने वाली वह प्रतिकृति है। गौण या अनुवर्ती कल्पना उसकी छाया मात्र है। सचेतन संकल्प शक्ति के साथ उसका सह–अस्तित्व होता है। दोनों में तात्त्विक भेद नहीं, अंतर मात्रा और क्रियाविधि का है। कविता को इससे प्रेरणा मिलती है।
- कॉजरिज ने कल्पना के दो भेद किए हैं–
  1. **प्राथमिक** – प्राथमिक कल्पना ईश्वर की सर्जना शक्ति का ही मनुष्य के मन में प्रतिबिंब है अर्थात् असीम सत्ता की चिरंतन सृजन शक्ति का ही ससीम मानव में आवृत्ति है। यह अखिल ब्रह्मांड उसी (असीम ब्रह्म) की कल्पना या सृजन शक्ति का परिणाम है। असीम ब्रह्म की कल्पना शक्ति का प्रतिबिंब ससीम मनुष्य के मन पर पड़ता है और उसमें कल्पना शक्ति जागृत हो जाती है। ससीम मनुष्य को इसी शक्ति के माध्यम से व्यक्त जगत का ज्ञान होता है।
  2. **गौण या अनुवर्ती** – यह कल्पना प्राथमिक कल्पना का निचला स्तर है। इसके माध्यम से मनुष्य स्वयं सृष्टि रचने में समर्थ होता है। यह दूसरे कोटि की कल्पना ही काव्य क्षेत्र में क्रियाशील होती है।
- कॉलरिज से पहले कल्पना और ललित कल्पना में अंतर नहीं किया जाता था, किंतु कॉलरिज ने इन दोनों में अंतर स्थापित कर दिया। ललित कल्पना का संबंध अचल और निर्दिष्ट पदार्थों से है। वह कल्पना को ललित–कल्पना से श्रेष्ठ मानता है। वह यह भी मानता है कि जिस प्रकार प्रतिभा को प्रज्ञा की आवश्यकता है, उसी प्रकार कल्पना को
- भी ललित–कल्पना की आवश्यकता है। यह एक दूसरे से भिन्न शक्तियां हैं। कल्पना का काम एकीकरण और
- पुनर्निमाण है, ललित कल्पना केवल संयोजन मात्र करती है, किंतु उस संयोजन में सरसता और मार्मिकता का अभाव होता है। कल्पना का संबंध आत्मा और मन से है, जबकि ललित कल्पना मस्तिष्क से संबंधित है। ललित कल्पना निर्जीव शक्ति है। कल्पना आत्मिक और ललित कल्पना यांत्रिक होती है। ललित कल्पना क्रम, अनुपात और व्यवस्था के बिना वस्तुओं का ढेर लगाती है, वह उन्हें एकत्रित, संगठित और जीवंत रूप नहीं दे सकती। जिस प्रकार स्वप्न में मनुष्य अनेक विचारों को एकत्र तो करता है किंतु उन्हें क्रम और अन्विति नहीं दे पाता।
- इस प्रकार कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। कॉलरिज पर जर्मन दार्शनिक शेलिंग और काण्ट का प्रभाव देखा जा सकता है।

++

काजरिज : फैन्सी

- कॉजरिज ने कल्पना के संबंध में विस्तार से विचार किया है। कॉलरिज ने कल्पना के संबंध में विस्तार से अने विचार प्रकट किये हैं। उनके विचार से वह कल्पना शक्ति ही है जो निराकार विचारों और भावों को रूपायित करती है। इतना ही नहीं, भाव और विचार के बीच , जो एक दूसरे के विरोधी माने जाते हैं– सामंजस्य और अन्विति स्थापित करती है। वाह्य पदार्थों और आत्मतत्त्व के संबंध स्थापित करने में भी कल्पना शक्ति का हाथ रहता है। उन्होंने कल्पना(इमेजिनेशन) तथा ऊहा (फैन्सी) के अंतर पर भी प्रकाश डाला है। यद्यपि दोनों तात्त्विक दृष्टि से एक हैं तथापि अंतर है।
- कल्पना – कल्पना काव्यगत सार्थक और उपयुक्त बिंबों की रचना करती है।
- ऊहा(फैन्सी) – ऊहा कपोलकल्पना, दिवास्वप्न वाले अनर्गल, अवास्तविक कार्यकलाप को मन में रूपायित करती है। ऊहा निम्नकोटि की मनगढंत बिंब रचना करती है। वह स्वच्छंद अननुशासित होती है। इसमें मनुष्य सुंदर, मन को प्रसन्न करने वाली बातों में दिवास्वप्न देखता रहता है। वास्तविकता से उसका संबंध नहीं होता, परंतु कल्पना आत्मा की एक शक्ति है। वह दिव्य है, सर्जनात्मक है।

+++

आई.ए.रिचड्र्स का मूल्य सिद्धांत, काव्य–भाषा सिद्धांत तथा संप्रेषण सिद्धांत

परिचय : आई.ए.रिचड्र्स का जन्म सन् 1893 में हुआ। उनका रचनाकाल सन् 1924 से 1936 के मध्य माना जाता है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। एक दर्जन ग्रंथों में से ' प्रिसिंपल ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' सबसे अधिक प्रसिद्ध।

सैद्धांतिक दृष्टिकोण :

- उनके पूर्व क्रोचे अपना अभिव्यंजनावाद स्थापित कर चुके थे। सिग्मण्ड फ्रायड, युंग तथा एडलर ने मनोविश्लेषणवाद का प्रतिपादन किया। मेक्स ईस्टमैन ने कविता को विज्ञान का अनुगमन करने की सलाह दी। आर्नल्ड ने यह घोषणा की कि धर्म और सस्कृति के इस संक्रांति काल में कविता ही मानव का उद्धार कर सकती है।
- इस संक्रांति काल में वैज्ञानिक उन्नति एवं भैतिक समृद्धि के संदर्भ में कविता का अवमूल्यन होने लगा। तब रिचड्र्स मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य के क्षेत्र में आए और मनोविज्ञान कि आधार लेकर उन्होंने अपने काव्य सिद्धांतों का उल्लेख किया। उन्होंने दो प्रमुख सिद्धांत दिए –
  1. कला का मूल्यवादी या उपयोगितावादी सिद्धांत 2. सम्प्रेषणीयता का सिद्धांत।

आई.ए.रिचड्र्स का मूल्य सिद्धांत

- रिचड्र्स से पूर्व पेटर, आस्कर वाइल्ड तथा प्रो. ब्रेडले आदि ने कला को कला के लिए माना और यह स्वीकार किया कि सौंदर्यजन्य आनंद ही काव्य कला का चरम मूल्य और प्रयोजन है। सौंदर्य पर दृष्टि टिकी होने के कारण इन विचारकों ने काव्य में नैतिक मूल्यों को गौण माना और 'कविता कविता के लिए ' या 'कला कला के लिए' सिद्धांत का प्रचार किया।
- उक्त सिद्धांतों का खंडन करते हुए रिचड्र्स ने कला–काव्य का जीवन मूलक मूल्यों से घनिष्ठ संबंध स्वीकार किया। उन्होंने माना कि सत्कला की मूलभूत शर्तें पूरी करने के उपरान्त कला को मानवसुख की अभिवृद्धि में निरत होना चाहिए, पीड़ितों का उद्धार करना चाहिए, पारस्परिक सहानुभूति के विस्तार में संलग्न होना चाहिए।
- काव्य रचना एक मानवीय क्रिया है, इसके मूल्य का मान नहीं होना चाहिए। जिस वस्तु से हमारी अधिक से अधिक इच्छाओं की तुष्टि हो सकती है, वह सर्वाधिक मूल्यवान है।
- उनका मत है कि आज जब प्राचीन परंपराएं टूट रही हैं और मूल्य विघटित हो रहे हैं, तब सभ्य समाज, कला और कविता के सहारे ही अपनी मानसिक व्यवस्था और संतुलन बनाए रख सकता है। जो कविता या कला–कृति स्नायुमंडल में व्यवस्था उत्पन्न करती है, वही प्रेरणा या आनंद प्रदान करती है और वही कल्याणकारी भी है। अतः कला का मूल्य से अटूट संबंध है, क्योंकि मूल्य हमारे लिए उत्तम एवं प्रेरक अनुभव ही होते हैं
- मन के भीतर आवेगों या वृत्तियों में उतार चढ़ाव,जीवन की परिस्थितियों या संघर्षों के कारण होता रहता है। इससे मन में तनाव या विषमता उत्पन्न होती रहती है। काव्य और कलाएं इन आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित करती रहती हैं और आवेगों को व्यवस्थित कर स्नायुमंडल को केवल राहत नहीं देती, वरन् सुख भी पहुंचाती हैं। सौंदर्य इसीलिए मूल्यवान है।
- मूल्यांकन संबंधी धारणाओं का संबंध मानसिक उद्वेगों से है। इसके दो रूप हैं–
  1. प्रवृत्तिमूलक – भूख, तृष्णा, वासना आदि।
  2. निवृत्तिमूलक – घृणा, निर्वेद, वितृष्णा आदि।
- जो प्रवृत्तिमूलक उद्वेगों की संतुष्टि करे, वही मूल्यवान है, क्योंकि वह उसके मन के विविध मांगों की संतृष्टि करता है। वे आवेग अधिक महत्त्वपूर्ण है जो दूसरों को क्षति पहुंचाए बिना अपना विकास करते हैं। फिर भी मन की सबसे उत्तम स्थिति वह है जिसमें मानसिक क्रियाओं की सर्वोत्तम संगति रहती है तथा आवेगों का संघर्ष

और विघटन कम होता है। कविता और कला आवेगों के बीच संतुलन स्थापित करती है। हमारी अनुभूतियों और संवेदनाओ को व्यापक बनाती है और इस प्रकार मानव–मानव के बीच संवेदनात्मक एकत्व स्थापित करती है। (भारतीय दृष्टिकोण से इसे अनुभव का साधारणीकरण कह सकते हैं।) रिचर्ड्स इस प्रकार का संतुलन और समन्वय कला का गुण मानते हैं। यही उनका मूल्य है।

- वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वरूप से जीवन का मूल्य मांगों की संगतिपूर्ण व्यवस्था पर निर्भर रहता है। साहित्य का मूल्य इसमें है कि वह हमारे उद्वेगों में संगति और संतुलन स्थापित करे और कविता आकांक्षाओं की तुष्टि करती है, अतः वह मूल्यवान है। वह कविता और भी मूल्यवान है, जो ऐसी श्रेष्ठ आकांक्षाओं की तुष्टि करे, जिससे कम से कम वृत्तियां क्षुब्ध होती हों। इस प्रकार कविता भौतिक वस्तुओं से कहीं अधिक मूल्यवान है।
- काव्यात्मक अनुभूति और सामान्य अनुभूति में अन्तर नहीं। उनके अनुसार कलात्मक अनुभूति किसी भी रूप में अलौकिक नहीं होती। काव्य और कलाएं मानव के अन्य व्यापारों से संबंद्ध हैं, उनसे भिन्न और पृथक नहीं। किसी भी मानव–क्रिया का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि वह किस सीमा तक मानव–मनोवेगों से संतुलन और व्यवस्था उत्पन्न करने में सक्षम है और इस दृष्टि से कविता और कला–सर्जना सर्वाधिक मूल्यवान क्रियाएं हैं। उनके मूल्य–सिद्धांत को 'सिनेस्थीसिस' या सामंजस्य या संतुलन का सिद्धांत भी कहा जा सकता है।

+++

आई.ए.रिचड्र्स का काव्य–भाषा सिद्धांत

- काव्य के संप्रेषण का मुख्य माध्यम भाषा ही है। रिचर्ड्स का भाषा संबंधी चिंतन महत्त्वपूर्ण है। उसने प्रयोग की दृष्टि से भाषा के दो वर्ग माने हैं –
  1. तथ्यात्मक प्रयोग – इसका प्रयोग वैज्ञानिक और दार्शनिक करते हैं।
  2. रागात्मक प्रयोग – रचनाकार भाषा के रागात्मक वर्ग का प्रयोग करते हैं। रागात्मक वर्ग की भाषा में प्रतीकों, बिंबों और भाव–संकेतों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यही भाषा कवियों और रचनाकारों की अनुभूति को संप्रेषित करने में समर्थ होती है।
- शब्द और अर्थ के संबंधों पर गहराई से विचार करते हुए रिचर्ड्स ने चार प्रकार के अर्थों का उल्लेख किया है–
  1. वाच्यार्थ या अभिधार्थ Sence
  2. भाव Feeling
  3. वक्ता की वाणीगत चेष्टा Tone
  4- अभिप्राय Intention
- रिचर्ड्स के अनुसार समृद्ध और समर्थ भाषा में उपर्युक्त चारों अर्थछायाएं होती हैं। समर्थ रचनाकार की भाषा में उपर्युक्त सभी विशेषताएं होती हैं।
- भाषा से सामान्यतः उपर्युक्त चारों प्रकार के अर्थ सूचित होते हैं, किंतु विषय और परिस्थिति के भेद से इनका अनुपात बदलता रहता है। विज्ञान की पुस्तकों में वाच्यार्थ का अधिक प्रयोग होता है।
- रिचर्ड्स के अनुसार सेन्स या वाच्यार्थ में किसी वस्तु विशेष या किसी विधेय को शब्दों के द्वारा सूचित किया जाता है। (विज्ञान एवं गणित आदि में प्रयोग)
- विज्ञान की पुस्तकों में वाच्यार्थ तो काव्य में भाव की अतिशयता होती है, फिर भी ये अर्थ परस्पर सर्वथा असंबद्ध नहीं हैं– वे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। काव्य में भाव या भावार्थ की इतनी अधिक महत्ता होती है कि वहाँ वाच्यार्थ या सूच्य तथ्य गौण हो जाते हैं। वहाँ तथ्य साधन होते हैं, साध्य नहीं, अतः जो लोग केवल तथ्यों अथवा विचारों के आधार पर ही कविता का मूल्यांकन करते हैं, वे काव्य के साथ न्याय नहीं करते।
- भाषा का प्रयोग भाव की प्रेरणा से होता है। (गणित जैसे कुछ विषयों को अपवाद स्वरूप छोड़कर)। कविता विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं अपितु भावों के प्रभाव के लिए होती है।
- अर्थ और भाव के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए रिचर्ड्स ने उसके तीन रूप स्वीकार किए हैं–
  1. जहाँ अर्थ ही भाव का बोधक हो।
  2. जहाँ अर्थ भाव की अनुभूति का सूचक हो।
  3. जहाँ प्रसंग विशेष के कारण अर्थ विभिन्न भावों का सूचक हो।
- टोन या लहजे के द्वारा वाचक का श्रोता के प्रति दृष्टिकोण व्यक्त होता है। क्रोध और प्रेम की दशा में हमारा टोन अलग–अलग होता है।

- सामान्यतः कोई भी व्यक्ति किसी प्रयोजन से ही कुछ कहता है, अतः अभिप्राय का भाषा से महत्त्वपूर्ण संबंध है।
- गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार– भाषा के चारों भेदों का विभाजन वैज्ञानिक एवं सुसंगत नहीं है। सही बात तो यह है कि रिचर्ड्स के भाव, लहजा और अभिप्राय – अर्थ के तीन भेद न होकर एक–दूसरे के अंग हैं। अर्थों के इस वर्गीकरण की अपेक्षा भारतीय आचार्यों द्वारा किए गए शब्द शक्ति के भेद अभिधा, लक्षणा और व्यंजना– अधिक वैज्ञानिक एंव तर्कसंगत हैं।

++

आई.ए.रिचड्र्स का संप्रेषण सिद्धांत

- पूर्व प्रचलित प्रेषणीयता शब्द की नवीन व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स ने कहा कि– प्रेषणीयता कोई अद्भुत या रहस्यमय व्यापार नहीं है, अपितु मन की एक सामान्य क्रिया मात्र है। प्रेषणीयता में जो कुछ होता है, वह यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में विभिन्न मस्तिष्क प्रायः एक जैसी अनुभूति प्राप्त करते हैं। जब किसी वातावरण विशेष से एक व्यक्ति का मस्तिष्क प्रभावित होता है तथा दूसरा उस व्यक्ति की क्रिया के प्रभाव से ऐसी अनुभूति प्राप्त करता है जो कि पहले व्यक्ति की अनुभूति के समान होती है, तो उसे प्रेषणीयता कहते हैं। वस्तुतः किसी अन्य की अनुभूति को अनुभूत करना ही प्रेषणीयता है। (कवि कलाकार या सर्जक की अनुभूतियों का भावक द्वारा अनुभूत किया जाना ही संप्रेषण है।)
- रिचर्ड्स के मतानुसार– संप्रेषण के लिए तीन बातें आवश्यक हैं–
  1. कलाकृति की प्रतिक्रियाएं एकरस हों
  2. वे पर्याप्त रूप से विभिन्न प्रकार की हों
  3. वे अपने उत्तेजक कारणों द्वारा उत्पन्न किए जाने योग्य हों।
- उन्होंने स्पष्ट किया कि कला में प्रेषणीयता आवश्यक है, किंतु कलाकार को इसके लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिए। कलाकार जितना सहज एवं स्वाभाविक रूप में अपना कार्य करेगा, उसकी अनुभूतियां उतनी ही संप्रेषणीय होंगीं।
- संप्रेषण तभी पूर्णता से होता है, जब विषय रोचक और रमणीय होता है।

++

टी.एस.इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत, वस्तुनिष्ठ सह–संबंधी, परंपरा की अवधारणा

परिचय :– जन्म 1888 अमेरिका, 1910 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से एम.ए.। संस्कृत और पालि भाषा का अध्ययन। निबंध और टिप्पणियां पुस्तक रूप में प्रकाशित – दि सेक्रेड वुड,1920, सेलेक्टेड एसेज 1917–32, दि यूज ऑफ पोयट्री एण्ड यूज ऑफ क्रिटिसिज्म 19333 आदि।

निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत (Depersonalization)

- **पृष्ठभूमि** : इस सिद्धांत का प्रतिपादन रोमैंटिक कवियों की व्यक्तिवादिता के विरोध में हुआ।इलियट एजरा पाउण्ड के विचारों से काफी प्रभावित थे। एजरा पाउण्ड की मान्यता थी कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ होता है। कवि का कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है।इस मत से प्रभावित होकर इलियट ने अनेकता में एकता बाँधने के लिए परंपरा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। वह साहित्य के जीवन्त विकास के लिए परंपरा का योग स्वीकार करते थे, जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्त्व नियंत्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है।
- **निर्वैयक्तिकता :** इलियट ने इसका अर्थ कवि व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण बताया है। तदनुसार कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण क्षमता से अन्य लोगों की अनुभूतियों को आयत्त कर लेता है, पर वे आयत्त अनुभूतियां उसकी निजी अनुभूतियां हो जाती हैं। जब वह अपने स्वयुक्त अथवा चिंतन द्वारा आयत्त अनुभवों को काव्य में व्यक्त करता है तो वे उसके निजी अनुभव होते हुए भी सबके अनुभव बन जाते हैं।
- कविता के घटक– तत्त्व, विचार, अनुभूति, अनुभव, बिम्ब, प्रतीक आदि सब व्यक्ति के निजी या वैयक्तिक होते हैं। कलाकार जब अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण शक्ति के माध्यम से अपने अनुभवों को काव्य रूप में प्रकट करता है, तो वे व्यक्तिगत होते हुए भी सबके लिए अर्थात् सामान्य (सार्वजन्य) बन जाते हैं। कवि उनके भार से मुक्त हो जाता है या कहिए कि ये तत्त्व कवि की वैयक्तिकता से बहुत दूर चले जाते हैं या कहिए कि निर्वैयक्तिक हो जाते हैं। भाव ही नहीं कविता के माध्यम से कवि अपनी वैयक्तिक सीमाओं से भी मुक्त हो जाता है, उसका स्वर एक व्यक्ति का स्वर न रहकर विश्वमानव का सर्वजनीन स्वर बन जाता है। उदाहरण के लिए कई तत्त्वों से चटनी बनती है पर चटनी तैयार होने पर सभी तत्त्व अपने स्वाद से मुक्त हो जाते हैं।
- इलियट कि यह निश्चित मान्यता है कि कला में अभिव्यक्त भाव निर्वैक्तिक होते हैं ओर कवि अपने को प्रकृति के प्रति समर्पित किए बिना निर्वैयक्तिक हो ही नहीं सकता। कविता मनोभावों की स्वच्छंदता नहीं है वरन् उससे पलायन है। वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं अपितु व्यक्तित्व से पलायन है। किंतु निश्चय ही जिनमें व्यक्तित्व और भाव हैं, वे ही यह जान सकते हैं कि उनमें मुक्ति की आकांक्षा का अर्थ क्या होता है। कवि व्यक्तिगत की अभिव्यक्ति नहीं करता, वरन् वह विशिष्ट माध्यम मात्र है।
- उनके प्रारंभिक वक्तव्यों से स्पष्ट है कि कविता उत्पन्न हो जाती है, उत्पन्न की नहीं जाती। इलियट ने कविता की उत्पत्ति को लेकर बाद में अपने मत में संशोधन करते हुए कहा कि – मैं उस समय अपनी बात ठीक से व्यक्त नहीं कर सका था। बाद में निर्वैयक्तिकता के संबंध में यह वक्तव्य दिया कि– **निर्वैयक्तिकता के दो रूप** होते हैं– एक वह जो कुशल शिल्पी मात्र के लिए प्राकृतिक होती है और दूसरी वह जो प्रौढ़ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध हो जाती है। दूसरे प्रकार की निर्वैक्तिकता उस प्रौढ़ कवि की होती है जो अपने उत्कट और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामान्य सत्य को व्यक्त करने में समर्थ होता है।
- उसने कवि के मन की तुलना प्लेटिनम के तार से की। जैसे ऑक्सीजन और सल्फरडाईआक्साइड प्लेटिनम के संपर्क में आकर सल्फ्यूरिस एसिड बन जाता है किंतु इस सल्फ्यूरिस एसिड में प्लेटिनम का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं देता। प्लेटिनम का तार भी पूर्णतः अप्रभावित रहता है। इसी प्रकार कवि के मन के संपर्क में अनेक प्रकार के संवेदन, अनुभूतियां और भाव आते हैं और नए–नए रूप ग्रहण करते रहते हैं किंतु प्रौढ़ कवि का मन अप्रभावित रहता है। वस्तुतः रचनाकार जितना प्रौढ़ और परिपक्व होगा, उसमें भोक्ता और स्रष्टा व्यक्तित्व का अंतर उतना ही स्पष्ट होगा।
- पाश्चात्य जगत उक्त धारणाओं से अचंभित होकर इन्हें हास्यापद एवं स्वतो व्याघात दोष से युक्त भी घोषित किया। पश्चिमी साहित्य चिंतन स्तर के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि इस सिद्धांत को वही व्यक्ति गहराई से समझ सकता है जिसने भारतीय आचार्य भट्टनायक के साधारणीकरण एवं अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद का अनुशीलन किया है। रस सिद्धांत के अंतर्गत जो बात साधारणीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत कही गई है वही बात निर्वैक्तिकता के सिद्धांत के अंतर्गत कही गई है। साधारणीकरण की अवधारणा के अनुसार कवि के भाव एक व्यक्ति के भाव नहीं रहते अपितु वे सर्वसाधारण या जनमानस के भावों में परिणत हो जाते हैं, इसीलिए कविता को प्रेम या विरह, सुख या दुख, हर्ष या विषाद, हास्य या रुदन सर्वसाधारण के सुख–दुख एवं हास्य–रुदन में परिणत हो जाता है। यदि हम इलियट की शब्दावली में कहें तो कवि के भाव निर्वैयक्तिक हो जाते हैं।
- साधारणीकरण या निर्वैयक्तिकता की खोज भारतीय आचार्यों ने 8–9वीं शदी में कर ली थी, उसी की खोज पाश्चात्य में इलियट के द्वारा 20वीं शदी में हुई।

++

टी.एस. इलियट : परंपरा की अवधारणा

पृष्ठभूमि : –इलियट के पहले 19वीं शती में अंग्रेजी में जिस रोमैंटिक समीक्षा का प्रचलन था वह कवि की वैयक्तिकता और कल्पनाशीलता को विशेष महत्त्व देता थी। 19वीं शती के अंतिम चरण में वाल्टर पेटर और ऑस्कर वाइल्ड ने 'कलावाद'को अत्यधिक महत्त्व दिया। अर्थात् 19वीं शती की अंग्रेजी समीक्षा कृति के स्थान पर कवि और उसकी वैयक्तिकता को महत्त्व देती थी।

- स्वछंदतावादी विद्वान कवि की प्रतिभा और अंतःप्रेरणा को ही काव्य–सृजन का मूल मानकर प्रतिभा को दैवी गुण स्वीकार करते थे। इसे ही 'वैयक्तिक काव्य सिद्धांत' कहा गया। इस मान्यता को इलियट ने अपने निबंध 'परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा' में स्वीकार किया और कहा ''परंपरा के अभाव में कवि छाया मात्र है और उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।'' उनके अनुसार, ''परंपरा अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है, परंपरा को छोड़ देने से हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि परंपरा के भीतर ही कवि की वैयक्तिक प्रज्ञा की सार्थकता मान्य होनी चाहिए।
- परंपरा को पारिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि ''इसके अंतर्गत उन सभी स्वाभाविक कार्यों, आदतों, रीति–रिवाजों का समावेश होता है जो स्थान विशेष पर रहने वाले लोगों के सह–संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंपरा के भीतर विशिष्ट धार्मिक आचारों से लेकर आगंतुक के स्वागत की पद्धति और उसको संबोधित करने का ढंग, सब कुछ समाहित है।'' इलियट यह मानता है कि परंपरा उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं होती। यह अर्जित की जाती है। वस्तुतः इलियट के लिए परंपरा एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के सांस्कृतिक–साहित्यिक दाय के उत्तमांश से वर्तमान को समृद्ध करता है। यह अतीत की जीवंत शक्ति है जिससे वर्तमान का निर्माण होता है और भविष्य का अंकुर फूटता है।
- परंपरा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए इलियट ने इस बात पर बल दिया कि कवियों का मूल्यांकन परंपरा की सापेक्षता में किया जाय। उसके अनुसार कोई भी रचनाकार स्वयं में महत्त्वपूर्ण नहीं होता। वह अपने पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में ही अपनी महत्ता सिद्ध कर सकता है।
- इलियट के अनुसार परंपरा का महत्त्वपूर्ण तत्त्व इतिहास–बोध है। परंपरा से उनका तात्पर्य प्राचीन रूढ़ियों का मूक अनुमोदन अथवा अंधानुकरण कदापि नहीं है, अपितु परंपरा वस्तुतः प्राचीन काल के साहित्य तथा धारणाओं का सम्यक् बोध है। वह परंपरा से प्राप्त ज्ञान का अर्जन और उसके विकास का पक्षधर है। यही परंपरा का गत्यात्मक रूपरूप है।
- परंपरा गतिशीाल चेतना, चिरगतिशील सर्जनात्क संभावनाओं की समष्टि है। परंपरा जहां हमें नवीन को मूल्यांकन करने का निकष प्रदान करती है, वहीं प्राचीनता के विकास के साथ–साथ मौलिकता का सृजन भी करती है। इस कारण वे सर्जनात्मक विकास के लिए अतीत में विद्यमान श्रेष्ठ तत्त्वों का बोध अनिवार्य मानते हैं। परंपरा ज्ञान के अभाव में हम यह कैसे जान सकेंगे कि मौलिकता क्या है, कहां है ? वस्तुतः अतीत को वर्तमान में देखना रूढ़िवादिता नहीं, मौलिकता है। वर्तमान कला का यथार्थ मूल्यांकन तभी संभव है, जब उन्हें विगत कला –रूपों के परिप्रेक्ष्य में परखा जाएगा अन्यथा उसकी मौलिकता और श्रेष्ठता का आकलन नहीं हो सकेगा।
- इलियट द्वारा प्रतिपादित परंपरा–सिद्धांत अत्यंत व्यापक और उपादेय है। परंपरा से ज्ञान का विस्तार होता है तथा अतीत और वर्तमान से जुड़ाव होता है, जिसमें कलाकार को मध्यस्थ की भूमिका निभाते हुए पूर्ववर्ती धाराओं से अवगत होकर कला तथा साहित्य की सर्जना करना होता है।
- परंपरा का संबंध संस्कृति से है। संस्कृति में किसी जाति या समुदाय के जीवन, कला, दर्शन–साहित्य आदि के उत्कृष्ट अंश सन्निविष्ट रहते हैं। संस्कृति में एक प्रकार का नैरन्तर्य रहता हैं, उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नपूर्वक अतीत को जानना जरूरी है। परंपरा बोध से साहित्यकार को यह भी ज्ञात हो जाता है कि वह जो कुछ कर रहा है, उसका मूल्य क्या । इस प्रकार परंपरा ज्ञान द्वारा साहित्यकार को कर्तव्यबोध और मूल्यों का साहित्यिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।
- इलियट ने समीक्षा या समालोचना, निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत, वस्तुनिष्ट समीकरण का सिद्धांत, परंपरा–सिद्धांत आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इलियट का व्यक्तित्व पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए युगान्तकारी रहा। काव्य सिद्धांतों के प्रतिपादन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

++

इलियट : वस्तुनिष्ठ सहसंबंधी या वस्तुनिष्ठ समीकरण का सिद्धांत

- इलियट के अनुसार भाव–संप्रेषण के लिए वस्तुनिष्ठ समीकरण आवश्यक है। इस संबंध में उसका कथन है– ''कला में भाव प्रदर्शन का एक ही मार्ग है, और वह यह है कि उसके लिए वस्तुनिष्ठ समीकरण (objective correlative) को प्रस्तुत किया जाय। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तु–संघटना, स्थिति, घटना–शृंखला प्रस्तुत की जाय जो उस नाटकीय भाव का सूत्र हो, ताकि ये वाह्य वस्तुएं जिनका पर्यवसान मूर्त मानस अनुभव में हो, जब प्रस्तुत की जायें तो तुरंत भावोद्रेक हो जाय। ''
- नाटककार जो कुछ कहना चाहता है, उसे वह वस्तुओं की किसी संघटना, किसी स्थिति, किसी घटना–शृंखला के द्वारा ही कहता है। अतः वह अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त विधान से काम लेता है। फलस्वरूप अमूर्त विधान हो जाता है। इन मूर्त चिह्नों तथा प्रतीकों से ठीक वही भावनाएं जागृत हेाती हैं जो कवि के मन में जागृत रहती हैं। चाहें तो हम इलियट के इस वस्तुनिष्ठ समीकरण को विभाव–विधान भी कह सकते हैं। यह विभाव–विधान ऐसा होना चाहिए कि सामाजिकों में नाटककार के मानस–भाव जाग्रत हो सकें।
- इलियट के वस्तुनिष्ठ समीकरण के सिद्धांत और एजरा पाउण्ड के कथन को लक्ष्य करके डॉ. रामरतन भटनागर ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, '' वह काव्य को संवेदना का प्रकाशन मात्र न मानकर उसे साक्षात्कार की प्रतीकवद्ध अभिव्यंजना मानते हैं। इस 'प्रतीकवाद' को ही इलियट ने 'प्रतिरूपवाद' नाम दिया है, क्योंकि वह प्रतीक पर रुकना नहीं चाहता।

++

लौंजाइनस का औदात्य सिद्धांत (काव्य में उदात्त तत्त्व)

लौंजाइन एक परिचय– ई.पू. तीसरी शताब्दी के यूनानी विचारक, कुछ लोग ईसा की पहली शताब्दी में रोम का रहने वाला काव्यशास्त्री मानते हैं। इनके ग्रंथ पेरिहुप्सुस की खोज 16वी शताब्दी में हो सकी और इसका प्रथम संस्करण 1554 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद ' दि सब्लाइम' किया गया । इन्होंने औदात्य की प्रेरणा कैसिलियस के निबंध 'उदात्त' से ली।

औदात्य सिद्धांत :– लौंजाइनस की औदात्य संबंधी अवधारणा बड़ी व्यापक है तथा साहित्येतर इतिहास, दर्शन और धर्म जैसे विषयों को भी समाविष्ट कर लेती है। लौंजाइनस ने उदात्त तत्त्व से परिपूर्ण रचना को ही श्रेष्ठ माना है। उसके विचारों को निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है:–

- उसने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के इन मतों का खंडन किया कि काव्य का उद्देश्य पाठक को मात्र आनंद प्रदान करना, शिक्षा देना और अपनी बात मनवाना है । उसने यह माना कि काव्य का लक्ष्य पाठक को चरम उल्लास प्रदान करना है। उसको तर्क द्वारा बाध्य करना नहीं, अपितु पाठक या श्रोता को 'स्व' से ऊपर उठाना है। उसे ऐसी उच्च भावभूमि पर पहुँचा देना है जहाँ निरी बौद्धिकता पंगु हो जाय और वर्ण्य विषय विद्युत प्रकाश की भांति आलोकित हो जाय।
- कल्पना के बारे में उसने स्वीकार किया कि काव्य का संबंध तर्क से न होकर कल्पना से है। साहित्यकार अपनी तर्क शक्ति द्वारा नहीं अपनी कल्पना के द्वारा पाठक को आकर्षित करता है।
- उसके मतानुसार जिस साहित्यकार का अध्ययन जितना गहन और विशद होगा, उसका साहित्य सौंदर्य से उतना ही आपूरित होगा।
- उसने उदात्त सिद्धांत को तीन वर्गों में विभाजित किया–
    - अंतरंग तत्त्व –
        - विषय की गरिमा
        - भावावेश या आवेग की तीव्रता (*भव्य आवेग तथा निम्न आवेग – भव्य आवेग से उत्कर्ष तथा निम्न आवेग से अपकर्ष)*
    - बहिरंग तत्त्व –
        - समुचित अलंकार योजना (विस्तारणा, शपथोक्ति, प्रश्नालंकार, विपर्यय, व्यतिवम, पुनरावृत्ति और छिन्नवाक्य, प्रत्यक्षीकरण, संचयन सार, रूप परिवर्तन, पर्यायोक्ति)
        - उत्कृष्ट भाषा (भव्य शब्दावली एवं पद रचना)
        - गरिमामयी उदात्त संरचना (वाक्य विन्यास या रचना विधान)– उदात्त शैली के सभी तत्त्व एकान्वित कर एक व्यवस्थित क्रम में हो तथा उनमें सामंजस्य हो।
    - विरोधी तत्त्व –
        - बालेयता या तुच्छता
        - असंयत वाग्विस्तार
        - क्षुद्रार्थद्योतक शब्द रचना
        - भाव एवं शब्दों का घोर अनावश्यक आडंबर
        - अभिव्यक्ति की आवश्यक संक्षिप्तता
        - क्षुद्रता
- विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति और वेग तो होना ही चाहिए साथ में ईश्वर का सा ऐश्वर्य और वैभव होना चाहिए। वह ऐसा होना चाहिए जिससे प्रभावित न होना असंभव हो जाय।
- उपयुक्त शब्द चयन, प्रभावशाली एवं उदात्त भाषा को प्रमुखता।
- मिथ्या चमत्कार हेतु अलंकार प्रयोग को वर्जित माना।
- बालेयता, असंगत वाग् विस्तार, क्षुद्रार्थ द्योतक शब्द रचना , भाव एवं शब्दों का घोर अनावश्यक आडंबर, अभिव्यक्ति की अनावश्यक संक्षिप्तता एवं क्षुद्रता आदि को विरोधी तत्त्व माना है।
- विरोधी तत्त्वों के प्रयोग से काव्य में निकृष्टता आ जाती है।
- गरिमामयी भाषा प्रत्येक अवसर के अनुकूल नहीं क्योंकि छोटी–छोटी बातों को भारी भरकम संज्ञा देना, किसी छोटे बच्चे को पूरे आकार वाला मुखौटा लगा देने के समान है।
- महान प्रतिभाशाली,उच्च विद्वान एवं चरित्रवान व्यक्ति ही उदात्त रचनाएं दे सकता है जैसे – होमर।
- लौंजाइनस में स्वच्छंदतावाद और अभिव्यंजनावाद दोनों के तत्त्व विद्यमान हैं।

- जिस प्रकार शरीर के सभी अवयवों का अलग–अलग रहने पर कोई महत्त्व नहीं सब मिलकर ही एक समग्र और संपूर्ण शरीर की रचना करते हैं उसी प्रकार उदात्त शैली के सभी तत्त्व जब एकाचित कर दिए जाते हैं तभी उनके कारण कृति गरिमामयी बनती है।
- यदि एक प्रतिभाशाली व्यक्ति चारित्रिक दृष्टि से हल्का एवं छिछोरा है, उसकी वासनाएं अपरिष्कृत एवं प्रवृत्तियां क्षुद्र हैं तो ऐसी अवस्था में उससे औदात्य की आशा नहीं की जा सकती।
- भावावेग के उद्वेलन एवं उससे उत्पन्न आनंद की बात को स्वीकार करते हुए लौंजाइनस ने भारतीय काव्यशास्त्र के रस सिद्धांत की धारणाओं को ही पुष्ट किया है।
- विरोधी तत्त्वों को भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य दोष माना गया है जो रस सृष्टि में बाधक होते हैं।
- भारतीय काव्यशास्त्र में कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धांत उदात्त के बहुत समीप है।

++

क्रोचे का अभिव्यंजनावाद

परिचय :

- बेनेदेते क्रोचे (1866–1952) इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक।
- आत्मवादी दर्शन के आधार पर सौंदर्यशास्त्र की व्याख्या।
- 1900 में एक संगोष्ठी में पढ़े गए एक निबंध में अभिव्यंजनावाद की मूलभूत अवधारणाओं को व्यक्त किया।
- उनका सौंदर्य–सिद्धांत 'अभिव्यंजनावाद' के नाम से प्रसिद्ध ।
- 1902 में ईस्थेटिक (सौंदर्यशास्त्र) ग्रंथ प्रकाशित।

आत्मा की चार मूलभूत क्रियाएं

- सैद्धांति (ज्ञानात्मक)
  - अंतःप्रज्ञात्मक (सहजानुभूति, प्रतिभा– कल्पना द्वारा)
  - तर्कात्मक (विचारात्मक, बौद्धिक – विचार द्वारा)
- व्यावहारिक (इच्छा)
  - आर्थिक
  - नैतिक

अंतःप्रज्ञा की कलात्मक परिणिति (सृजन प्रक्रिया) चार चरणों में

- संस्कार प्रस्फुरण (कल्पना पर पड़ा प्रभाव)
- अभिव्यंजना (मानसिक रूपात्मक या सौंदर्यात्मक संश्लेषण या अभिव्यक्ति)
- सौंदर्यानुभूति का आनंद
- स्थूल अभिव्यक्ति (शारीरिक क्रिया के रूप में रूपान्तरण) (ध्वनियों,स्वरों, गतियों, रंगों, रेखाओं और शब्दों के माध्यम से)

नोट : इनमें सबसे अधिक महत्त्व अभिव्यंजना का माना है

अभिव्यंजनावाद :

- अभिव्यंजनावाद एक कला सिद्धांत है, जिसका संबंध सौंदर्यशास्त्र से है न कि साहित्यिक आलोचना से। क्रोचे की मान्यता है कि कलाकार अपनी कलाकृति में अपने अंतर की अभिव्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति बिंबात्मक होती है, जिसका स्वरूप उसके हृदय में विद्यमान होता है, वाह्य जगत से उसक कोई संबंध नहीं। वाह्य जगत केवल बिंब निर्माण में सहायक हो सकता है।
- कला में परंपरावादिता का विरोध कर व्यक्तिवाद पर विशेष बल दिया जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 'कला कला के लिए' सिद्धांत की स्थापना हुई। उसने कहा कि कला का कोई उद्देश्य नहीं। कला, कला के लिए ही होती है।
- कला रचना की दृष्टि से अंतःप्रज्ञात्मक ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि।
- तर्कात्मक ज्ञान का कला रचना की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं।
- अंतःप्रज्ञा का ज्ञान मनःशक्ति द्वारा उपलब्ध कराया जाता है, जबकि विचारात्मक ज्ञान बुद्धि का विषय है।
- सहजानुभूति को किसी का सहारा नहीं चाहिए। ''उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे की आंखें उधार ले, कारण उसकी आंखें स्वयं काफी तेज हैं।''
- अंतःप्रज्ञात्मक ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ही होता है। उनके मत से प्रभाव नहीं वरन् प्रभाव की रूप रचना कला है।
- प्रत्येक अंतःप्रज्ञा (सहजानुभूति) कला है और प्रत्येक कला अंतःप्रज्ञा।
- कला किसी महत् उद्देश्य का साधन नहीं है, वह स्वयं साध्य है। उसे लेकर नैतिक अनैतिक का प्रश्न भी नहीं उठाना चाहिए।
- क्रोचे ने अपने ग्रंथ सौंदर्यशास्त्र का सिद्धांत में तत्त्व (मैटर या विषयवस्तु) और रूप (फॉर्म) दोनों पर ही विचार किया है। उन्होंने यह स्थापना की है कि सौंदर्यसत्ता के क्षेत्र में रूप ही महत्त्व का है, तत्त्व नहीं।
- वस्तु और रूप घुलमिलकर एक हो जाते हैं तब कला का जन्म होता है।
- अलंकृत और अनलंकृत का भेद स्वीकार नहीं।
- भारतीय दृष्टिकोण से कहें, तो सहजज्ञान सगुण साकार से संबद्ध है और बौद्धिक ज्ञान निराकार से। सहजज्ञान उतना ही होता है जितना प्रकट या अभिव्यंजित है– न उससे कम और न उससे ज्यादा। सहजज्ञान मन पर पड़े प्रभाव के कल्पनाजनित बिंबों के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही अभिव्यंजना ही कला है। अतः कला सहजानुभूति है। इस प्रकार अभिव्यंजना सिद्धांत, कलावाद, बिंबवाद, प्रभाववाद आदि का प्रेरक है।
- क्रोचे श्रेष्ठ काव्य उसे मानता है जो मानव के विचार, भाव, कार्य को भावना कारूप प्रदान कर पाठकों को पूर्ण तन्मय कर देता है। भारतीय रस–सिद्धांत भी यही है। क्रोचे और रसवादी चिंतक इसे विशुद्ध काव्यानुभूति मानते हैं। इस प्रकार क्रोचे कला को मानव जीवन से जोड़ देता है।
- क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत साहित्य या कला–समीक्षा की कसौटी प्रस्तुत नहीं करता, वरन् यह कला की उत्पत्ति या सृजन–प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।
- कुछ लोगों ने भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिष्ठित कुन्तक के वक्रोक्तिवाद से इसकी तुलना भी की है, पर दोनों नितान्त भिन्न भूमियों पर अवस्थित हैं। कुन्तक जहाँ रचित कविता के मूल्यांकन की कसौटी प्रस्तुत करते हैं और वक्रोक्ति के विविध रूपों की चर्चा करते हैं, वहाँ क्रोचे कला–सृजन की प्रकिया का मौलिक विश्लेषण करते हैं। काव्य या रचना किस कोटि की है, इससे क्रोचे के सिद्धांत को कोई विशेष संबंध नहीं। काव्य या कला रचना कैसे होती है और उसका स्वरूप क्या है? इसका उत्तर ही उसका प्रमुख प्रतिपाद्य है।

++

अस्तित्ववाद

- डेनिस विद्वान सारन कीर्केगार्ड के विचारों से उद्भूत तथा जे.पी.सार्त्र द्वारा पल्लवित अस्तित्ववादी विचारधारा का आधारभूत शब्द अस्तित्व अंग्रेजी के existance का पर्याय है।
- इस वाद के अनुयायी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्त्व देते है। इनके अनुसार सारे विचार या सिद्धांत व्यक्ति की चिंतना के ही परिणाम हैं। पहले चिंतन करने वाला मानव या व्यक्ति अस्तित्व में आया, अतः व्यक्ति अस्तित्व ही प्रमुख है, जबकि विचार या सिद्धांत गौण। उनके विचार से हर व्यक्ति को अपना सिद्धांत स्वयं खोजना या बनाना चाहिए, दूसरों के द्वारा प्रतिपादित या निर्मित सिद्धांतों को स्वीकार करना उसके लिए आवश्यक नहीं। इसी दृष्टिकोण के कारण इनके लिए सभी परंपरागत, सामाजिक, नैतिक, शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक सिद्धांत अमान्य या अव्यावहारिक सिद्ध हो जाते हैं। उनका मानना है कि यदि हम दुख एवं मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार कर लें तो भय कहाँ रह जाता है।
- अस्तित्वादी के अनुसार दुख और अवसाद को जीवन के अनिवार्य एवं काम्य तत्त्वों के रूप में स्वीकार चाहिए। परिस्थितियों को स्वीकार करना या न करना व्यक्ति की ही इच्छा पर निर्भर है। इनके अनुसार व्यक्ति को अपनी स्थिति का बोध दुख या त्रास की स्थिति में ही होता है, अतः उस स्थिति का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। दास्ताएवस्की ने कहा था– '' यदि ईश्वर के अस्तित्व को मिटा दें तो फिर सब कुछ (करना) संभव है।''

++

रूसी रूपवाद

परिचय :

- रूसी रूपवाद का प्रादुर्भाव रूस में हुआ। इसलिए इसे रूसी–रूपवाद भी कहा जाता है। साहित्यिक समीक्षा की इस प्रणाली से संबंद्ध लोगों में बोरिस इकेनबाम, विक्टर श्केलोवस्की, रोमन जैकोब्सन, बोरिस तोयस्जेवस्की और तानिनोव उल्लेख्य हैं। इसके दो केंद्र थे– पीटर्सबर्ग और मास्को। पीटर्सबर्ग में इस संस्थान की स्थापना 1916 में हुई और मास्को में 1915 में। मास्को संस्थान की रुझान भाषिकी की ओर अधिक थी।
- रूपवाद ने 20वीं शती के प्रथमार्ध में आन्दोलन का रूप ले लिया था। ऐसा माना जाता है कि रूस में 1919 में विक्टर श्केलोवस्की ने इस आन्दोलन का सूत्रपात किया था।
- भारतीय आचार्यों और पाश्चात्य काव्य चिंतकों ने काव्य में वस्तु (कान्टेन्ट) और रूप (फॉर्म) दोनों में किसे अधिक महत्त्व दिया जाय, यह प्रश्न पर विचार किया है। वस्तुतः कलावादी भी प्रकरान्तर से रूपवाद के ही समर्थक रहे हैं।

सिद्धांत

- रूपवाद को स्पष्ट करने के लिए वस्तु और रूप क्या है, इसे समझना आवश्यक है। काव्य में विचार, भावानुभूति, प्रवृत्ति और इच्छा आदि जिन्हें कवि व्यक्त करना चाहता है, वस्तु के रूप में स्वीकार किए जाते हैं और रूप वह पद्धति, शब्द संरचना या आवयविक संघटन है जिसके माध्यम से वस्तु को व्यक्त किया जाता है। जो विचारक काव्य में सामाजिक मूल्यों या जीवन यथार्थ को अधिक महत्त्व देते हैं, वे वस्तु को मुख्य मानते हैं। इसके विपरीत जो काव्य को पूर्णतः स्वायत्त मानते हैं, वे रूप को अधिक महत्त्व देते हैं।
- श्केलोवस्की का मानना है कि कला सबसे पहले शैली और तकनीक है उसके बाद और कुछ। लेकिन उसका कहना था कि कला तकनीक केवल पद्धति या रीति नहीं है, वह कला की वस्तु भी है। उसकी दृष्टि में कलाकार क्या कहता है यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह है कि वह कैसे कहता है।
- रूपवादी कलाकार को एक कारीगर या शिल्पी के रूप में देखते हैं। रूपवादी यह मानता है कि कविता सबसे पहले तकनीक है और तकनीक पूरी रूप रचना है, मात्र पद्धति नहीं। कवि के जीवन के यथार्थ को शब्द संघटना के सहारे एक सुन्दर कविता का रूप दे दिया है। जीवन यथार्थ कविता में समाहित है। उसका पृथक अस्तित्व नहीं रह जाता। कविता अपनी पूर्णता में भाषिक संरचना ही है। पाठक पर प्रभाव इसी संरचना का पड़ता है। इससे गुजरते हुए वह कवि की अनुभूति और उसमें स्पंदित जीवन यथार्थ तक पहुंचता है।
- रूसी रूपवाद के पुरोधा श्केलोवस्की ने कहा था– ''कला हमेशा जिंदगी से मुक्त होती हे। इसका ध्वज शहर की चारदीवारी पर फहराते हुए झंडे के रंग को प्रतिबिंबित नहीं करता।''उसका निश्चित मत था कि –''कला–रूपों का विवेचन कला–नियमों द्वारा ही होना चाहिए।''
- नई समीक्षा, शैली विज्ञान, और संरचनावाद आदि सभी समीक्षा पद्धति एक प्रकार से रूपवादी ही मानी जाएंगीं।
- रूपवाद पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए डॉ. बच्चन सिंह कहते हैं– ''वस्तुतः रूपवाद, कलावाद का ही दूसरा नाम है। इस कलावाद ने समीक्षा के क्षेत्र में काफी कहर ढाया है। साहित्य को जीवन से अलग करके सिर्फ संरचना तक ही अपने को सीमित कर लेना प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति की चरमसीमा है। साहित्य के आस्वाद से भी इसे कुछ लेना–देना नहीं है। जिस संवेदना शून्य भाषा यानी रोज़मर्रा की भाषा को संवेदन पूर्ण बनाने की चेष्टा की जाती है उसमें संवेदना क्या है ? 'रूपवाद' इस पर भी विचार नहीं करता।''
- संरचनावादी भाषिकी और संरचनात्मक नृतत्वशास्त्र से रूपवादी समीक्षा का अद्भुत साम्य है। रूपवादी भी स्वनिमीय उपायों तक ही अपने को सीमित रखते हैं। स्वनिमीय वस्तु, संदेश, इतिहास आदि से उसे कुछ लेना–देना नहीं है।उसकी

दृष्टि मे कला की स्वायत्तता निर्विकार है और कला की पड़ताल का क्षेत्र उसका रूप है। समीक्षा को साहित्य से 'क्या' से नहीं, 'कैसे' से अपना संबंध रखना चाहिए।

- जैकोब्सन के मतानुसार– समीक्षक को साहित्यिकता या उन तत्त्वों से जिनसे साहित्य निर्मित होता है, उलझना चाहिए। साहित्य की संरचना कृति है, कृतिकार में नहीं, कविता में में है, कवि में नहीं।
- श्केलोवस्की का कहना है कि कला का केंद्रवर्ती बिंदु 'अजनबी बनाने' में है, यथार्थ को डिस्टॉर्ट(रूप परिवर्तन) करने में है। पहचानी हुई चीज पर अनचाहेपन का रंग चढ़ाने में है। साहित्यिक भाषा अजनबी होती ही है। इसकी को कुंतक विचित्र अभिधा कहते हैं।
- रूपवादी भाषा पर जोर देते हैं, क्योंकि साहित्य की भाषा सामान्य से कहीं उदात्त होती है। कविता में शब्द विचारों का वाहक मात्र नहीं है, अपने आप में वस्तु (ऑब्जेक्ट) है, स्वायत्त इकाई (इंटिटी) है। वह वाचक न होकर स्वयं वाच्य (सिग्नीफाइड) है। काव्यगत शब्द का निश्चित वाच्यार्थ नहीं होता। वह काव्य में प्रयुक्त होकर वाच्यार्थ को विस्तार देता है और अन्य अभिधेयों से संबंद्ध होकर दूसर अर्थ में संक्रमित कर जाता है।
- रूपवाद में यथार्थ के प्रति कवि का दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि भाषा के प्रति उसके दृष्टिकोण का महत्त्व है। क्योंकि वह पाठक को जागरूक बनाकर भाषा की संरचना देखने में मदद करता है। कविता सामान्य भाषा को निरूपित करती है, उसे विलक्षण बनाती है। जहां तक साहित्य के इतिहास का संबंध है रूपवादी समीक्षकों की दृष्टि में वह रूपों के परिवर्तन का इतिहास है।
- साहित्य एक प्रकार की भाषिक संरचना (लांग) है जो अपने आप में स्वायत्त, आंतरिक संगति से पूर्ण और आत्मानुशासित है और अन्ततः संरचनात्मक भाषिकी और नृतत्त्वशास्त्र से संबंद्ध हो जाती है। हर वैयक्तिक कृति वाक् (पेरोल) है जो मूल भाषा (लांग) से बंधी हुई है और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।

++

नई समीक्षा

- नई समीक्षा कोई नया समीक्षा सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करती, वरन् वह एक कलावादी आंदोलन के समान, एक आंदोलन है – जो कलावाद की ही एक शाखा है, जिसमें किसी भी कृति की समीक्षा, कृति के आधार पर ही किए जाने का आग्रह है। इसका जन्म साहित्येतर मूल्यों (समाजशास्त्र, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि) के आधार पर काव्य का मूल्यांकन करने के विरोध में हुआ।
- क्लासिकल या अभिजात्यवादी
- नयी समीक्षा जिन आधारभूत बातों पर बल देती है वे निम्नलिखित हैं–
  1. काव्य भाषिक संरचना मात्र है, इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्त्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य धर्म है।
  2. ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, दार्शनिक एवं मनोविश्लेषणवादी समीक्षाएं अनावश्यक एवं अप्रासंगिक हैं।
  3. संप्रेषण एवं आस्वाद के प्रश्न पर विचार तथा मूल्यांकन का प्रयत्न आवश्यक नहीं है।
  4. रचना की आंतरिक संगति और संश्लिष्ट विधान के विवेचन विश्लेषण के लिए उसका गहन पाठ नितान्त आवश्यक है।
- काव्य की आत्मा खोजने के स्थान पर काव्य की संरचनात्मक अन्विति अर्थात् कविता के समग्ररूप और अंगों के अंतःसंबंधों का विश्लेषण कर उसकी जटिल संरचना का विश्लेषण करने पर बल।
- रचना के काव्यार्थ को विश्लेषित करने के साथ–साथ पाठ विश्लेषण, शब्द कौशल, प्रतीक विधान, अलंकार योजना आदि सभी तत्त्वों का विश्लेषण।
- शब्द विधान एवं अर्थ विघान के पारस्परिक संबंध की खोज।
- कविता पर पूरा ध्यान केंद्रित करते हुए उसके भाषिक विश्लेषण पर बल।
- विसंगति को काव्य भाषा का प्रधान गुण मानना। विसंगति ही किसी कविता के संरचानात्क ढाँचे का मूल आधार है।